

गोमती-लहरी

उन्नावमण्डलान्तवर्ति रऊग्रामवास्तव्य-लक्ष्मणपुरस्थ
सी० आई० ई० श्रीमुंशीनवलकिशोर-विद्या-
लयाध्यापकचन्द्रकेतुशर्मविनिर्मिता ।

धवलपुरमण्डलान्तर्गत तिलौवा-ग्रामनिवासिना लक्ष्मण-
पुरस्थ सी० आई० ई० श्रीमुंशीनवलकिशोरमन्दिरस्य
पाकाध्यक्षेण अङ्गदरामशर्मणा विरचितया भावा-
वलंबिन्याख्यया भाषाटीकया समलंकृता ।

सेयम्

लक्ष्मणपुरस्थ सी० आई० ई० श्रीमुंशीनवलकिशोर-
यन्त्रालये (श्रीमती बड़ी बहू) द्रव्यव्ययेन
सेठोपनामकश्रीकेसरीदासप्रबन्धेन च
मुद्रिता ।

सन् १९२८ ई०

श्रीगणाधिपतये नमः ।

गोमती-लहरी

(भाषा-टीका-सहित)

अये मातर्गोमत्यमलजलधारे तव गुणा-
नलं वक्रुं नेशः कथमपि च शेषः शतमुखः ।
हरो वैषा यत्र स्फुरति नवगंगामृतलता
तदा कोऽहं मोहं गत इह समर्थस्तव नुतौ १

टीकाकारकृत मंगलम्—

नत्वा सरस्वतीमाद्यां वाग्देवीं सुन्दराननाम् ।
भावावलंबिनीं टीकां कुर्वे भाषामिह स्तुतौ ॥

हे अमल जलधारवाली गोमति ! तुम्हारे गुणों को हजार मुखवाले
शेष और जिन शिवजी के मस्तक पर अमृतलता गंगा बह रही है
वह महादेवजी भी नहीं कहने को समर्थ हैं, तो मोह को प्राप्त मैं
कौन हूँ कि तुम्हारी स्तुति करने को समर्थ होऊँ ?

अहो मातर्गोमत्यमलजलसंभारविलस-

त्तनुस्पर्शादर्शप्रहतखलजम्बालनिकरे ।

पुनीषे संसारं शमनशवसानं शमयसि

मनश्चैन्द्रं देवि त्वमिह सततं शंकितयसि २

हे मातः गोमति ! निर्मल जलभार से शोभित शरीर के स्पर्श
अथवा देखने से दुष्ट पापसमूह के नाश करनेवाली तुम्हीं इस
संसार को पवित्र करती हो और यमराज के मार्ग को रोककर
निरन्तर इन्द्र के मन को शंकित करती हो २

अलं गंगा संगाम्बिलुलिततरंगा स्मररिपो-

रपामीशः साक्षादखिलजगदाधारशयनात् ।

क्षये कल्माषानामिह तु महिमा कोऽपि भवती-

मनालम्बः शम्बोऽस्तवननिकुरम्बः प्रथयति ३

महादेव के संग से चंचल तरंगवाली गंगा और जगदाधार विष्णु
के शयन करने से समुद्र पाप नाश करने में समर्थ हैं किंतु
हे गोमति ! आप में विना आलंब कल्याणयुक्त जिसकी स्तुति नहीं है
ऐसी कोई महिमा आपको विश्व में प्रसिद्ध कर रही है ३

अलं क्षोदीयांसः कलिलकलने धूर्जटिजटा-

पुटे संस्थाप्लावप्लुततरतमस्काः कथमपि ।

परं मातर्गोमत्यगतिशमनग्रासपतिता-

नहं जाने द्राघीयस इह पुनानैव भवती ४

पाप करने में अतिक्षुद्र पापी महादेवजी के जटापुटस्थ गंगा
में स्नान करने से कथंचित् निष्पाप हों परन्तु हे गोमति अंब !
जिनकी गति नहीं है और यमराज के ग्रास में गिरे हैं अथवा
यमराज के ग्रासभूत जो बड़े-बड़े पतित हैं उनको मैं जानता हूँ
तुम्हीं पवित्र करनेवाली इस संसार में हो ४

नदीनं का दीना विषमशरसंघातकृशिता

नदी नदीनेन क्षणविहितविघ्नापि न गता ।

त्वमेवैकामुद्रा कुहकवधके पुण्यसलिला

जनुर्वधासंधे चरसि शुचि ब्रह्मव्रतमिह ५

कामदेव के विषम बाणों के समूह से जर्जरीभूत क्षण भर महादेव के विघ्न करने पर भी कौन ऐसी नदी है जो स्वपति समुद्र में न पहुँची, किंतु हे पापनाशिनि ! कर्मबीजों में अविश्वासिनि, अर्थात् मोक्षप्रदे ! मुद्राभूता तुम्हीं एक शुचि ब्रह्मव्रत को आज भी कर रही हो ५

त्वमेवाम्ब ब्रह्मप्रथितकरकोत्पत्तिसुभगे

विराजन्ती लोके क्षपितकलिशोके भगवती ।

वियद्गंगानंगद्विषदमलसंगादिह तु या

परा नाद्या सेयं प्रभवति हिमाद्रेस्तटतलात् ६

ब्रह्मा के प्रसिद्ध कमण्डलु से उत्पत्ति के कारण मनोहर और कलिहाल के शोक नाश करनेवाली सर्वेश्वर्य से विराजमान आकाश-गंगा तुम्हीं हो और महादेवजी का संबंध है जिससे ऐसे हिमालय से जो निकलती है सो दूसरी है आदि गंगा गोमती ही हैं । अथवा वह परा उत्तमा नहीं है और आदि की नहीं है ६

बृहत्तीरे संतो जठरपिठरे प्राक्तनशुभा-

दलं याते नीरे किमपि शयितोद्बुद्धसदृशाः ।

करस्थं ब्रह्माण्डं क्षणमिह तवांभः स्तुतिपराः

निरीक्षन्तो यान्ति स्थिरपदमथावृत्तिरहिताः ७

हे गोमति ! विपुल तट पर रागद्वेषादिशून्य जन प्राक्तनशुभ से तुम्हारे नीर को पेटरूपी पेठार में पड़ने से कुछ सोकर जागे से होकर तुम्हारे जल की स्तुति करते और ब्रह्मांड को करस्थ देखते हुए पुनः आवागमनरहित मोक्षपद को प्राप्त होते हैं ७

किरीटं तैरीटं लघयति कृपीटेन रचयन्

मृदा भाले पुण्ड्रं जननि तव जानन्नपि जनः ।

यमालोक्य भ्रान्ता शमनपुरतः किंकरगणा

अलक्ष्या वेपन्ते त्रिभुवनमहाराजभवने ६

हे मातः गोमति ! जाननेवाला मनुष्य इस संसार में तुम्हारे जल से मृत्तिका का पुंड्र भाल में बनाकर सुवर्ण के किरीट को लघु समझता है जिस पुंड्र को देखकर भ्रान्त यमराज के किंकरगण यमराज से छिपकर त्रिभुवन महाराज के भवन में भी कांपा करते हैं ६

ध्रुवं शंस्ता कश्चिन्निखिलसिकतागूढकणिका-

स्तवस्याग्नेगूस्ते भवतु नतु मातः कथमपि ।

गुणागारं स्तोतुं तलिनपुलिने माहिनमलं

जलं देवो वाचामपि च विभुराचारनिरतः १०

निश्चय करके हे मातः ! कोई भी स्तोता संपूर्ण बालू को छिपी हुई कणिकाओं की स्तुति करने में अग्रगामी हो, किन्तु हे पवित्र तटवाली गोमति ! गुणों के आगार पूज्य तुम्हारे जलों को आचारनिरत बृहस्पति भी स्तुति करने को किसी तरह भी नहीं समर्थ हो सकते १०

न के के ते तीरे सुलभविभवा वारिपथिकीं

मनोऽभीष्टिं लब्धा मम तु पुनरेषा बलवती ।

तमः पारावारात्सुरधुनि दरिद्रौघदमनि

प्रकुर्वीथाः पारं सदयकरमालंब्य जननि ११

हे सुरधुनि ! कौन कौन नहीं जलमार्ग से आई हुई मनोरथ को पाकर तुम्हारे तट पर सुलभ विभव हुए, परन्तु मेरी तो यही अभिलाषा अति बलवती है कि हे दरिद्रसमूहनाशिनि, मातः ! दुःख-पारावार से दयापूर्वक हाथ पकड़कर पार कर दो ? ?

सदैव त्वत्तीरे निभृत निवसन्तं जनमिमं

त्वदाधारं जानन्त्यपि च निभृतिं यास्यसि यदि ।

निरालंबः पंथाः शरणभरणे किं च जननि

प्रथाविश्वासस्य स्वलति नितरां देवनिवहे १२

सदैव तुम्हारे तट पर एकान्त में बसते हुए इस जन को जो कि केवल तुम्हारे ही आश्रय है जानती हुई भी जो चुप हो जाओगी, तो हे जननि ! शरणागत के रक्षा करने का मार्ग निरालंब हो जावेगा और देवताओं के समूह में विश्वास की प्रथा अत्यन्त गिर जायगी ? ?

समुल्लंघ्योद्धन्धं यमगृहविशालार्गलमिव

स्वनंत्यः सद्घोरं विजयमिव लब्धा धवलितैः ।

पयः पूराकारैः स्मितमिव दधत्यः पतदपां

समूहैः पूतास्ते जननि विजयन्तां लहरयः १३

यमराजराज के भवन के विशाल अर्गला की भांति बन्धा को लांघ कर विजय को ऐसा प्राप्त घनघोर शब्द करती हुई दुग्ध के समान आकारवाले स्वच्छ जलसमूह से मंद हास को करनेवाली पवित्र हे मातः ! तुम्हारी लहरें सर्वोत्कर्षशालिनी हैं ? ?

प्रहारं पापानामनवमविहारं क्षितिरुहां

समाहारं शुद्धेः रुचिरमतिहारं तनुजुषाम् ।

परीहारं व्याधेरपि च नवनीहारमुरसां

पयो वन्दे मातस्तव कलिलसंहारकमलम् १४

पापों के नाशक वृक्षादि के लिए उत्तम विहाररूप और शुद्धियों का समूह प्राणियों की रुचिर बुद्धि का हारस्वरूप व्याधि का निवारक संतप्त हृदय के लिये नीहार के सदृश समस्त कलिल-विनाशक हे मातः ! तुम्हारे जल की वन्दना करता हूँ १४

समायातप्रातस्तरुणतरुणीवृन्दमभितः

कृतस्नानं नीरं कलयति तवाम्ब क्षणमिह ।

चलन्नीलालीलालिततरलव्योममुदिर-

द्युतिग्रामस्फारस्फुरद्गुरुविडौजोधनुरुचि १५

प्रातःकाल आए हुए तरुण तरुणियों का समूह स्नान किए हुए तुम्हारे नीर को हे अम्ब ! क्षण काल के लिये चलायमान है नील वर्ण की जो लीला उससे ललित तरल आकाश में मेघों पर दीप्ति-समूह से विपुल स्फुरते हुए पूर्ण इन्द्र के धनुष् की शोभा के सदृश कर देता है १५

पतंतीनामूर्ध्वात् कथमपि समारुह्य गहनं

जटाजूटं शैवं विकृतपरिपाकादिह शुभे ।

त्वदीयानामम्ब प्रततलहरीणामथ च त-

न्नदीनामौपम्यं वदतु पशुपादन्य क इह १६

किसी तरह गहन शिव के जटाजूट को पाकर भी अशुभ परिपाक

से ऊपर से नीचे को गिरती हुई अथ च अधःपतन को प्राप्त उन नदियों का और विस्तृत तुम्हारी लहरियों को पशुप के अतिरिक्त और कौन बराबरी कर सका है अथ च शिव के अतिरिक्त और कौन कर सका है १६

निमग्नानामन्तःसलिलमसकृत् केलिकलना

समासकत्युन्मुक्तप्रवरकवरी कंजसुदृशाम् ।

अनुन्मेषोन्मेषैः त्रिदशतटिनी रौक्मविकचा

ससेवालांभोजद्युतिरिह विजिग्ये मुखमयैः १७

जल के भीतर निमग्न अर्थात् स्नान करती हुई और बार २ खेल में आसक्त होने से जिनके केशपाश खुल गए हैं और जल के ऊपर तैरते हैं ऐसी कमल के समान स्त्रियों के मुखमय उन्मेष और अनुन्मेषों से अर्थात् डुब्बी लगाकर मुखों के बाहर-भीतर करने से मन्दाकिनी के सुवर्णमय विकसित सहित सेवार के कमलों की शोभा जीती जाती है १७

समुद्भूतेः सद्भावनतिहरपद्माश्रयवपुः

प्रवाहः संतानप्रतिभट्टपरिस्पर्धिनिविडः ।

पयः पूरः शूरस्त्रिविधभवभूतोत्थदलने

कथं कुर्यामिम्बस्तवनमहमेकस्तव शुभे १८

सकल संपत्तियों का निवास अवनति के हरनेवाली लक्ष्मी का भी आश्रयवाला शरीर और संतान के विघ्नों को नाश करने में दृढ़ जल जोकि तीनों तरह की सांसारिक व्याधियों के दलने में शूर ऐसे अनेक गुणवाली हे शुभे ! मैं अकेले तुम्हारी स्तुति कैसे कर सका हूँ १८

ध्रुवं व्यासंगस्ते स्फुरति शतशः पूर्णतटिनी

समाहारे पारे निभृतपतितोद्धारकरणे ।

अहं त्वेवं जाने कलिलकलनाशून्यमसकृ-

त्तमः पारे कर्तुं जननि जनमेनं प्रभवति १६

छिपे हुए पापियों के उद्धार करने में अपार सैकड़ों नदियों के समाहार याने समूह को स्फुरित होने पर भी जो तुम्हारे बहने का कारण है सो मैं जानता हूँ कि निश्चय कर पापों की गणना से शून्य अर्थात् जिसके दोषों की इयत्ता नहीं है ऐसे मुझ पापी के तारने हेतु ही यह तुम्हारा व्यासंग है १६

लिखेदेव ब्रह्मा निपुणमलिके रोषवशतो

लिपिं दुर्वर्णांकां स्फुरतु पृतना प्रैतपतिकी ।

अहं त्वेवं शंकानिबिडरतिरंकोऽघनिचयं

तृणाय त्वं मन्ये जननि ननु जागर्षि यदिह २०

रोषवश ब्रह्मा मस्तक में दुर्वर्णों के अंकों को लिखें और यमराज की सेना घूमे, मैं तो ऐसी शंकारूपी घने प्रेम का रंज हूँ किन्तु पाप-समूह को तृणवत् समझ रहा हूँ जिससे कि हे जननि ! तुम इस लोक में वर्तमान हो २०

कपर्दी कल्याणि त्रिदशगिरिकोटिप्रतिहते

सरिन्नाथे जातं गरलमलिनाकाशमपिबत् ।

ततो माद्यन् वाहं वृषभमहिहारं शशिकलां

शिरस्युरीकुर्वन्नधृत तव बुद्ध्या गिरिनिदीम् २१

हे कल्याणि ! मन्दराचल की कोटियों से समुद्र को मथने पर

भ्रमर के समान काला उससे हालाहल निकला जिसको शिवजी ने पीलिया बस तभी से उन्मादित होकर बैल को वाहन और सांपों को हार शशिकला को शिर में किया किञ्च उसीसे तुम्हारे धोखे गंगा को धर लिया नहीं तो तुम्हीं योग्य थीं २१

धवित्रीं पापानां निरवधिसवित्रीं सुखभुवाम्
लवित्रीं वर्णानां कुविधिवशभाले विलसताम् ।
पवित्रीं चित्तानां सकलभुवनोद्धर्त्रि भवती-

मलं स्तोतुं शेषोऽप्ययुतमुखभूषोऽपि न शुभे २२
पापों को दूर करनेवाली और निरवधि सुख के कारणों को पैदा करनेवाली कुभाग्यवश भालस्थ कुवर्णों की नाश करनेवाली मन को पवित्र करनेवाली हे सकल भुवन के उद्धारिणि ! तुम्हारी स्तुति करने को १०००० मुखभूषण शेष भी समर्थ नहीं हैं २२

अलं मंत्रैर्यत्रैःकृतमपि जपध्यानबलिभि-
वृथाकायक्लेशस्तपनकिरणैस्तापनविधौ ।
सुखं रे निःशंकाः भ्रमत भववीथौ यदवधि
प्रभापूर्णा तिष्ठत्यवनितलमध्ये वृषवती २३

मंत्र यंत्र व्यर्थ है जप ध्यानबलि से क्या ? किञ्च सूर्य की किरणों से शरीर संतप्त करना वृथा है हे जनो ! निःशंक होकर सुख से संसार-रूपी वीथी में घूमो जबतक प्रभापूर्ण पृथ्वीतल में गोमतीजी बहती हैं २३

निराधारो धाराधरिणि धरणी धूलिविलुठ-
त्तनुस्तृष्णा कृष्णस्तरुणकरुणे सैष कृपणः ।

समुद्धर्त्या भर्त्या सकलजगतामीशि कथ-

मप्यथोपेक्ष्यो गोमत्यनवरतभवदाशः प्रणयवान् २४

हे धारा को धारण करनेवाली ! निराधार और धरणी की धूलि से धूसरित शरीरवाला जो तृष्णा से कृष्ण होरहा है ऐसा यह कृपण-जन हे पूर्ण करुणावाली ईशि ! सब संसार का उद्धार करनेवाली आप द्वारा कैसे उपेक्ष्य होरहा है जब कि तुम्हारी आशा और प्रणय-वाला है २४

दिनस्यान्ते विद्युज्ज्वलनप्रतिबिम्बद्युतिमिषो-

ल्लसन्नेत्रानन्त्यक्षणसुरपुरालोकविलसत् ।

लुठन्नक्राचक्रोड्डमररवमत्स्यध्वनितटे

चलद्यानध्वानध्वनितमधिवन्दे तव जलम् २५

सायंकाल विजलियों के जलने से प्रतिबिम्ब द्युति के व्याज से विकसित अनेक नेत्रों से आनन्दपूर्वक आकाश के आलोकन से विलसित और लोटते हुए ग्राहसमूह से वृद्धिगत शब्द और मत्स्यध्वनि-वाले किञ्च तट पर चलते हुए मोटर आदि यानों के ध्वान से ध्वनित कहे गर्जते हुए तुम्हारे जल को प्रणाम करता हूँ २५

तपस्यन्तः संतः कति न गिरिमन्तःप्रणयिनः

कियन्तो जुहन्तो जगति मतिमन्तः सुरपुरीम् ।

समुज्झन्त्यो शन्तस्तरलललनाभोगमिह तु

प्रसादात्ते मात द्वयमपि सुखादाप्यमनिशम् २६

कितने नहीं संत प्रेम से पर्वतों में तपस्या करते हैं और कितने नहीं हवन करते हुए बुद्धिमान् सुरलोक की इच्छा करते हुए इस

संसार में सुन्दर ललनाओं के भोग का परित्याग करते हैं किंतु हे
मातः ! तुम्हारे प्रमाद से ये दोनों पदार्थ सुख से प्राप्त हो सकते हैं २६

समालम्बालम्भः सुललितविसाम्भोजहसितं

लसच्छम्भं कम्बप्रणयिनिकुरम्बप्रणमितम् ।

वलदम्भोदंभोलिगणयुतशंभोरपि परं

हरत्वंभोऽम्बाशु प्रतनु मम जम्बालमखिलम् २७

भो अम्ब ! समालम्बन के लिए पर्याप्त और सुन्दर मृणालवाले
अंभोजों का जिनमें हास है कल्याण से शोभित भाग्यशाली भक्त-
समूहों से प्रणमित विसृतदंभ के लिये प्रचण्ड वज्रस्वरूप गणों से
युक्त शंकरजी से भी उत्तम जो सूक्ष्म तुम्हारा जल है सो शीघ्र मेरे
संपूर्ण पाप का नाश करे २७

प्रयच्छन्त्यातंकं सुतनु ननु दण्डायुधभृते

विलोकन्ती लोकं धरणिवति भक्ताय सततम् ।

दिशन्ती कल्याणं सकलभुवनव्यापि महिमे

नयस्याख्यां स्वीयामसितसलिलेऽन्वर्थपदवीम् २८

हे सुन्दर शरीरवाली गोमति ! [वज्ररूपार्थ] से यमराज के
लिए भय को देती हुई [पृथ्वीरूपार्थ से] हे धरणीयुक्त संसार
को [दृष्टिरूपार्थ से] देखती हुई भक्तों को कल्याण देती हुई
[दिग्गूरूपार्थ से] हे सकल भुवन में व्याप्त महिमावाली स्वच्छ
सलिल से पूर्ण तुम्हीं अपने नाम को अनुगतार्थ करती हो २८
[दिग्दृष्टिदीधितिस्वर्गवज्रवाग्बाणवारिषु भूमौ पशौ च गोशब्दः]

तमस्तोमं रोमोल्लासितमपि सान्द्रं निगलितुं

यदेतत्तेऽच्छाम्बु त्रिदशतटिनीन्दुप्रतिनिधि ।

समूलं संगूढं तदिह मम पापद्रुममहो

परिस्यूतं चित्ते तटमिव सुजंघन्तु जटिलम् २६

हे त्रिदशतटिनि स्वर्गनदी रोमों में लगा भी यह निर्मल तुम्हारा जल घन जो पापरूपी अन्धकार को भक्षण करने के लिए चन्द्रमा का प्रतिनिधि है सो चित्त में उत्पन्न छिपे हुए समूल जटिल मेरे पापद्रुम को तट की नाई नाश करे २६

अहो चंचूर्षि त्वं चरमपतितव्रात्यवल्यं

समुद्धर्तुं कर्तुं कुहकमहमेवं दिनचयम् ।

व्यतीतं नो विद्धो नहि तु तव मेऽपि प्रतिपलं

विधातुः स्यादायुस्तदिदमवसाने स्मरसि मे ३०

अहो गोमति ! तुम अत्यन्त पतित जातिच्युत जनों के समूह को उद्धार के निमित्त और मैं पाप करने के निमित्त भ्रमण करता रहता हूँ । इस तरह निज २ व्यापार में हम दोनों की बीती आयु मालूम नहीं हुई, नहीं तो तुम्हारा और मेरा प्रतिपल ब्रह्मा का आयु हो जाता सो यह मेरे मरने बाद मालूम होगा ३०

किमुक्तासंयुक्ता पतितजननिस्तारणविधौ

भवत्यंहः संघाहरणशरणः केन च जनः ।

अलं शंकातंकैः प्रकृतिबलमूलो विधिरयं

ततो दध्वःस्वे स्वे जननि ननु कर्मण्यभिरतिम् ३१

किसके कथन से पतित जनों के निस्तारण में तुम युक्त हो और हे भवति ! किससे प्रेरित होकर मनुष्य पापसमूहों के अर्जन करने में शरण लेता है इस विषय में शंकाभय वृथा है यह विधान

प्रकृतिबलमूल है अर्थात् स्वाभाविक है इससे हम दोनों निज निज कर्म में अभिरुचि धारण करें ३१

मयन्तः शुन्धत्या निरयशतवर्त्मैलितपयः

प्रभावर्द्धैः मातर्मनुजमनुजादा अपि गुरोः ।

व्रजन्तस्तल्पान्तं तदपि पुरुहूतश्रुतपुरे

सुखं तन्वङ्गीनां कुचकलशगूढाः शेरत अमी ३२

हे मातः ! नरक के सैकड़ों मार्गों को जाते हुए गुरुदारगामी भी अतएव मनुष्यरूपी राक्षस पवित्र करनेवाली आपके जल प्रभाव से इन्द्र के प्रसिद्ध नगर में सुखपूर्वक तन्त्रंगियों के कुच-कलशों में छिपे हुए यह लोग सोते हैं यह अपूर्व ही कृपा है ३२

ज्वलज्ज्वालक्रोधः श्वसितमिह ते यस्तनुभृता-

मलं हृद्यं सद्यो मुषितमिव कुर्वन् प्रहरति ।

मरुल्लोलालीलालहरिलतिकानां व्यतिकरा-

दहो मातर्नूनं भवति स कृतान्तोऽपि शमनः ३३

जल रहा है ज्वाला के समान क्रोध जिसका ऐसा यमराज भी अर्थात् (कृतान्त) भी जोकि प्राणियों के अत्यन्त प्रिय प्राणों को चोरी ऐसा करता हुआ प्रहार करता है हे अंब ! सो भी वायु से लोल है लीला जिनकी ऐसी तुम्हारी लहरियों के संसर्ग से कृतान्त न होकर शमन हो जाता है अहो आश्चर्ययुक्त तुम्हारा जल है ३३

प्रवाहैरंभोजप्रसविनि समालोकनयुषां

क्षिपन्त्यादुर्दान्तं वृजिन दलमानन्दनिलये ।

ध्रुवं मन्ये मातः श्रवणबुधितैकस्थितिजुषां

जरीहर्तुं पापं तव लहरिमालाकलकलः ३४

हे कमलों के पैदा करनेवाली ! मैं यह मानता हूँ कि प्रवाहों के द्वारा देखनेवालों के दुर्दान्त पापदल को नाश करनेवाली हो हे आनन्दनिलये ! केवल श्रवणमात्र से ज्ञानवालों के पाप हरने को यह तुम्हारी लहरियों की मालाओं का कलकल है ३४

अलंभ्योको लोकैरपि न खलु कैस्कैः क्रतुभुजा-

मलंभ्योको लोकैः सुकृतकुकृताभ्यामिह परम् ।

वयत्वेवं विद्मो न खलु भवती यत्र वहति

प्रपंचस्तत्रत्यस्तटिनिसमुपावर्णि कविभिः ३५

किन किन लोगों करके देवताओं का पुर नहीं प्राप्त किया गया और किन २ करके नहीं अत्यन्त भयानकभवन जो नरक लोक है प्राप्त किया गया उसमें हेतु अपने २ पुण्य पाप ही हैं परन्तु हम तो यह जानते हैं कि यह स्वर्ग-नरक का विभाग जहां पर आप नहीं हैं वहीं पर का कवियों ने वर्णन किया है ३५

अलं भ्रामं भ्रामं श्रमितमचलामण्डनिकरे

वितण्डा खण्डाङ्गं प्रततयमदण्डाश्रयतनुम् ।

कृपापूर्णापांगैरहितविषयासंगपतितं

परिष्वंगे कर्तुं जननि जनमेनं नहि परा ३६

खूब अच्छी तरह घूम-घूम कर पृथ्वी को इस ब्रह्मांड में थके हुए वितण्डा का पूर्णरूप और अहित विषयों के आसंग में गिरे हुए अत एव विस्तृत यमदण्ड के आश्रय तनुवाले इस जन को अपने कर में करने को हे मातः ! तुम से दूसरा नहीं है इससे कृपाकटाक्ष करो ३६

भवादारभ्याहो यदवधि न बुद्धिस्थितिरभू-
दहं शर्मागारस्तदनु विलसत्यम्ब जगतः ।

प्रपंचे चिन्ताभिस्तटिनि सहसा जर्जरतनुं
वरीभर्तुं चाद्य त्वमिह मिलितासि प्रणयतः ३७

जन्म से लेकर जबतक कि ज्ञान नहीं हुआ मैं अपने को
कल्याणों का आश्रय समझता था उसके बाद जब ज्ञान हुआ और
संसार का प्रपंच उज्ज्वलित हुआ तो शीघ्र ही यह जन जर्जरतनु
हुआ है आज उस जीर्ण शरीरवाले जन को भरण करने को हे
श्रव ! तुम प्रेम से मिली हो ३७

अलं ते वल्गन्तामनवसितवल्गायत इमे
मुधा देव्यो देवा हरिहरभवानीप्रभृतयः ।

मुहुः काले काले विपदमनुभूयाम्ब पुरत-
स्तदेतेषामागाममितकरुणे तेऽद्य शरणम् ३८

व्यर्थ ही हर हरि भवानी आदिक देवी देवता गर्व से भरे रहें
और डींग पीटें कि हमी हैं जो हैं क्योंकि उनके कुछ लगाम तो
लगी नहीं है परंतु बार २ इन लोगों के शरण में रहकर हे मातः !
मैंने विपत्तियों का अनुभव किया इससे अब हे अमितकरुणे !
इस समय मैंने तुम्हारी शरण ली है ३८

दलत्यामम्बैषां त्वयि हि जनतापं परिभवा-
दकूपारे शेते निभृत इव विष्णुः स्मरहरः ।

अलक्ष्यो वैलक्ष्यादहह ननु विक्षित इव सं-
वसानः सर्वाशा भ्रमति मृतभूमिष्वविरतम् ३९

हे अंब ! जिनके पापों को विष्णु और शिव नहीं दूर कर सके उनके पापों को जब तुम दलन करने को उद्यत हुई, तो परिभव से विष्णु जाकर छिपकर समुद्र में सोने लगे और महादेव लज्जा से अलक्ष्य होकर पागल की नाई नंगे शरीर स्मशानों में घूम रहे हैं ३६

निरस्यंती पापं सकलमनिरस्यं यदितरै-

रमूनीशानादीनशितवलिभोज्यान् स्थितिजुषाम् ।
त्रपंत्यप्यन्तस्त्वं गलितदृढ दर्पान् विदधती

समालम्बस्वाम्ब स्वजनमनुकंपार्द्रहृदये ४०

जिस पाप को दूसरा नहीं दूर कर सकता उन पापों को दूर करती हुई तुम इन विश्वासी भक्तों की पूजा और भोजनादि स्वीकार करनेवाले ईशानादि को स्वयं लज्जा करती हुई भी अहंकार-शून्य करती हो हे अंब ! अनुकम्पा से आर्द्रहृदय अपने इस जन को ग्रहण करो ४०

उपालम्भारम्भे निरतमितरेषामविरतं

निरालंबे सत्यप्यनवधिमदोद्रेकनिलयम् ।

तथाप्यूरीकर्तुं जननि जनमेनं परिकर-

स्त्वदीयं वात्सल्यं प्रथयति समस्तेऽवनितले ४१

अन्यों की निंदापूर्वक भाषण में हमेशा लगे हुये और आलंब न होने पर भी अखण्ड अहंकार का गृहरूप ऐसे भी इस जन को स्वीकार करने में तुम्हारा यह परिकर समस्त भूतल में तुम्हारी वत्सलता को प्रकाशित करता है ४१

मुकुन्दोऽप्यासीनो विपुलभवने भार्गवकृते

यदन्तर्ब्रह्माण्डं लुठति सहसोदम्बरनिभम् ।

समाकांक्षी नित्यं भवति यदपां लक्ष्मणपुरे

हरत्वेनः सेनां मम तु खलु सा काष्ठपुलिनी ४२

जिन मुकुन्द के उदर में यह समस्त ब्रह्माण्ड सहसा गूलर फल की भांति लोट रहा है वह मुकुन्द भार्गववंशीय श्रीप्रयागनारायण के विपुल मंदिर में बैठे हुए जिस गोमती के जलों की निरंतर आकांक्षा करते हैं वह लखनऊ काठ के पुलवाली गोमती मेरे पापों की सेना को दूर करें ४२

स्फुरच्चिन्तामत्स्यप्रबलविषयग्राहजटिल-

प्रथान्यञ्चं चञ्चत्कुहरलहरीपूर्णमसकृत् ।

पुनीथा निस्यन्दैरमृतकलकल्लोलजनितै-

र्जडप्रायं मातर्जननदमगम्यं निजतया ४३

जिसमें चिन्तारूपी मत्स्य है और प्रबल विषयरूपी ग्राह है जटिल प्रथा से नीचे जानेवाले और जिसमें विघ्नरूपी चमकती लहरियां बार २ पूर्ण हो रही हैं ऐसे जड़प्राय अथ च जलप्राय इस जननद को अपना जातीय जानकर अमृत से सुन्दर कल्लोलों से उत्पन्न निस्यन्दों से अगम्य को पवित्र करो ४३

भुजंगेशः शेषोऽप्यथ च गिरिजेशस्तव नुतिं

विधातुं लोकेशः कथमपि न कार्मठ्यमगमत् ।

तदा कोऽहं जन्तुर्जननि जगतीरत्नलतिके

ह्यलंकर्मीणः स्यामहह भवतीं स्तोतुममले ४४

सर्पाधिराज शेष और महादेव ब्रह्मा भी जिस तुम्हारी स्तुति करने को समर्थ नहीं है तब मैं कौन जन्तु हूँ कि हे भूतल में रत्नलतारूप मलरहित तुम्हारी स्तुति को अलंकर्मीण होऊँ ४४

जुगुप्सन्तः पापादवनिविरमन्तः श्रुतिधरा
निलीयन्ते लोकादवनितलजातां भगवतीम् ।

अजानाना एके वयमिह तु कल्पद्रुमशतं
समं न्यक्कुर्वन्त्यां त्वयि जननि लीयेमहि सुखम् ४५

हे रक्षण करनेवाली ! वैदिक जन कोई २ संसार में आई हुई
आपको न जानते हुए पाप से अलग होते हुए संसार से छिपते हैं
हम तो एक दफे में भी सैकड़ों कल्पद्रुमों को तिरस्कार करनेवाली
आपमें हे मातः ! सुख से लीन हो रहे हैं ४५

दिशंतीं कामानां कृदरजठरामंगलमयी-

मनादृत्यावद्या यदिह कृपणानंगकुनृपान् ।

समर्थन्तेऽर्थन्तां मम तु खलु शूलं बुधवरा

व्रजन्तो लोकेशीं कथमयि न नाथन्ति कुधियः ४६

मनोरथों को देनेवाली मंगलमयी आपका अनादर करके
निन्दित पेटू लोग यदि मूढ़ राजाओं को याचते हैं, तो याचें पर
मुझे तो शूल यह है कि विद्वान् लोग जाते हुए दूसरों के यहाँ
कुबुद्धि क्यों नहीं तुझीं से याचना करते हैं ४६

लसच्छन्दोबन्धां परमरमणीयां गुणगणैः

रसालंकाराढ्यां ध्वनिशतसमेतां शुचिपदाम् ।

सुरीतिं सद्वर्णां विलसदभिधेयां तव तनुं

नुमो लक्ष्याच्छाभां सरसकविकल्पतां कृतिमिव ४७

जिसमें छन्द के समान बंधा बंधा है अन्यत्र सुन्दर जिसमें छन्दों
का बंध है और गुणसमूह से परमरमणीय-अन्यत्र माधुर्यादि गुणों

से सुन्दर जल की शोभा से पूर्ण—अन्यत्र रस शृंगार आदि और उप-
मादि अलंकारों से आढ्य, सैकड़ों ध्वनि अर्थात् शब्दों से युक्त, अन्यत्र
व्यंग्यपूर्ण पवित्र स्थानवाली, अन्यत्र शुद्ध पदवाली, सुन्दर रीति
धारावाली, अन्यत्र सुन्दर न्यासवाली, सुन्दर वर्णवाली, अन्यत्र सुन्दर
अक्षरवाली, सुन्दर नामवाली, अन्यत्र रुचिर अर्थवाली, लक्ष्य
शोभावाली, अन्यत्र लक्ष्यार्थ से सुन्दर प्रभावाली हे भगवति ! तुम्हारी
तनु को सरस कवि की बनाई कृति के समान प्रणाम करता हूँ ४७

कचित्कंजालीढोल्लसितविसिनीवृन्दविलस-

त्तटं कल्लोलात्तं तव मृगविहंगादिप्रसृतम् ।

परिच्छन्नं नानामुनिजनकदम्बांकितमिदं

समाचंखायान्मे जननि भवजम्बालमखिलम् ४८

कहीं कहीं कंजों से उल्लसित कमलिनियों के वृन्द से विलसित
और लहरों से गृहीत मृग विहंगादि से व्याप्त भांति २ के मुनिजन
समूहों से अंकित और पूर्ण हे गोमति ! तुम्हारा तट मेरे सांसारिक
संपूर्ण पाप को नाश करे ४८

तत्राम्भः शंभ्वादित्रिदशगणसंभावितमिदं

भृतं भाले भक्त्या भवति भवजातैरिह न यैः ।

बृहल्लोलापांगैरथ च लसदंभोजरुचिह-

च्छयैरेतैर्लाभः क इह जननि प्रापि जनुषा ४९

शंभु आदि देवतागणों से वंदित तुम्हारा जल संसार में आए हुए
जिन लोगों करके भक्ति से भाल पर नहीं धारण किया गया, बड़े बड़े
चंचल नेत्रवाले और कमलकी रुचि हरनेवाले हाथों से युक्त भी उनलोगों
करके जन्म पाकर हे गोमति अम्ब ! क्या फल पाया गया कुछ भी नहीं ४९

मुधा सौधं धाम त्वरितमयि मातर्हृतधिया

विहायायाच्यंतद्द्रविणमदमूढाः क्षितिभुजः ।

तदेतत्पापानामविकलफलाभोगनिरतं

निरीक्ष्याम्बाशु त्वं शमय मम मंतूनथ शुभे ५०

जल्दी से व्यर्थ ही अमृतमय धाम छोड़कर हे मातः ! इतबुद्धि मुझसे धन-मद से मूढ़ क्षितिप याचे गये । सो उन पापों के संपूर्ण फलों के भोग में लगे हुए मुझे देखकर हे शुभे ! मेरे अपराधों को शान्त करो ५०

स्पृहा लोकेनाम्ब क्षणमपि ममानर्घ्यरुचित-

व्यथाशोकाम्भोधिबुडिततनुषोविक्लवभृतः ।

तदेतत्संयम्य प्रततलहरीमंजलिपुटं

समायाचे मातः शिथिलयतमां संसृतिमिमाम् ५१

हे अम्ब ! मुझे इस संसार से अब बिलकुल प्रेम नहीं है इससे अमूल्य हृदय प्रियवस्तु के नाश से शोकरूपी सागर में जिसका शरीर बूड़ा है और हर वक्र व्याकुलता से पूर्ण इस जन की संसृति को अर्थात् संसारबन्धन को शिथिल करो यही हाथ जोड़े प्रार्थना कर रहा हूँ ५१

लभेदर्थी स्वार्थं सुतमपि सुतार्थी स्तुतिमिमा-

मधीयानः शत्रून् जयति विजयार्थी प्रतिदिनम् ।

कृतं व्यक्त्या सिद्धिं दिशति नहि कां कामियमहो

भुवं प्राप्तां शश्वद्भजत ननु रे कल्पलतिकाम् ५२

इस स्तुति को प्रतिदिन पढ़नेवाला यदि धनार्थी है तो धन को और सुतार्थी सुत को प्राप्त होता है । विजयार्थी शत्रुओं को जीतता

है प्रकाश करना व्यर्थ है यह कौन कौन सिद्धि को नहीं देती रे
जनो ! पृथ्वीतल को प्राप्त इस कल्पलतारूपी गोमती का सेवन
करो ५२

वाचामीश्वरगीयमानचरितश्रीमौलिलालायिता-

म्भोजद्वंद्वसमानपादयुगुलश्रीमाधवस्यात्मभूः ।

शब्दार्थागममंजुकुंजविलसच्छास्त्रान्तरारण्यक-

व्यासंगैकपरायणश्रुतिगुहाशायी सुधी केसरी ५३

श्रीसौमित्रिपुरस्थभार्गवमणिश्रीविष्णुनारायण-

च्छत्रच्छायसमाश्रितःप्रतिदिनंश्रीचन्द्रकेतुः कविः।

अन्तेवासिगणाग्रसंघपणितस्तुत्यांग्रिकंजद्वयी

लीलाखेलतयैवगोमतिनदीस्तोत्रंव्यनैषीदितिम् ५४

बृहस्पति से गीयमान है चरित जिनका और लक्ष्मी मौलि द्वारा
जिनके कमल सदृश चरण युगल को चाहती है ऐसे श्री पंडित प्रवर
माधवशर्मा का पुत्र—व्याकरण साहित्यरूपी जिसमें कुंज है ऐसे
अन्य शास्त्ररूपी अरण्य के व्यासंग में युक्त वेदरूपी गुहा में सोनेवाला
विद्वच्छ्रेष्ठ लखनऊ के भार्गवों में मणि सदृश श्रीविष्णुनारायण की
छत्रच्छाया में आश्रित और अनेक उत्तम २ शिष्यसमूह से पूज्य
जिसके चरण स्तुत्य हैं ऐसे चन्द्रकेतु कवि ने विना परिश्रम के इस
गोमती स्तोत्रको निर्मित किया ५४

श्रीचन्द्रकेतुकविना रचितस्तवं यः

प्रातः पठेदिह तटेऽथतदम्बुमग्नः ।

सर्वेप्सितार्थवलयं कलयांचितश्री-

स्तस्मै दिशत्यविरतं ननु गोमतीयम् ५५

चन्द्रकेतुकवि कृत इस गोमती स्तोत्र को तट पर या जल में जो मनुष्य पढ़ेगा उसको कलाओं से अंचित श्रीगोमती सब ईप्सित समूहों को देवैंगी ५५

मासद्वयं प्रतिदिनं पुलिनासनस्थ-

श्छात्रो यदि स्तवपिदं पठति प्रभाते ।

सारस्वतं स्फुरति धाम किमप्यलं य-

त्स्वान्तं प्रसादयति रंजयति त्रिलोकीम् ५६

यदि छात्र प्रातःकाल तट पर प्रतिदिन दो मास इस स्तोत्र को पढ़े, तो सब विद्याओं का स्फुरण हो और संसार के सब लोग उससे प्रसन्न हों—अर्थात् वशीभूत हों ५६

केनाप्यकथ्यशोकेन प्रेरितेन दिनात्यये ।

व्यधायि न तु पांडित्यदर्शनाय स्तुतिर्मया ५७

किसी अकथनीय शोक से दिन बिताने में प्रेरित मेरे द्वारा यह स्तुति बनाई गई है पांडित्य दिखलाने को नहीं ५७

क्व शोकार्तं मनः केदमावहित्यप्रकल्पनम् ।

तत्क्षमध्वमहो धीरा विषमे समुपस्थिते ५८

कहां शोकार्त मन और कहाँ चित्तैकाग्रतासाध्य कल्पना तदपि हे धीर ! विषम उपस्थिति में आप लोगों को क्षमा करना उचित है ५८

मात्सर्यं समनुत्सृज्य परदोषैकदृष्टयः ।

स्मयन्तान्तेन किञ्चैते हसन्ति पितरं स्वकम् ५९

अभिमानिता को न छोड़ परके दोष देखनाही जिनकी दृष्टि का मुख्य कार्य है वह हँसै कया वे अपने बाप को भी नहीं हँसते ५६

नैषावर्णि क्वचित्पूर्वमहाकविभिरुत्तमा ।

गोमतीति मया दृष्टिर्न्यधायीह प्रयत्नतः ६०

महाकवियों ने जो पूर्व हुए हैं इस उत्तम गोमती का वर्णन नहीं किया इससे यत्र से मैंने इस पर दृष्टि डाली है ६०

मास्तु साहित्यसौन्दर्यवर्णनेह परं त्वियम् ।

शब्दिता गोमतीनाम्ना दिशत्यविरतं सुखम् ६१

इस स्तुति में साहित्यिक सौन्दर्य न हों परंतु गोमती नाम से कीर्ति तो यह हमेशा सुख को देती है ६१

इति गोमतीलहरी समाप्ता ।

अन्वयादिकमुल्लंघ्य शब्दार्थान्कानपि ध्रुवम् ।
भावावलंबिनी टीका सैषा क्लृप्ता विशेषतः ?
भक्तानां पठतामेषा यदि स्यादुपकारिणी ।
गोमतीकृपया तेनोत्फलं मन्यामहे श्रमम् २

इति श्रीगोमतीलहरीटीका भावा-
वलंबिनी समाप्ता ।